भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री

पाकिस्तान के नाम पर नफरत परोसती फिल्में

भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री में हाल के वर्षों में बनीं फिल्मों पर नजर डालें, तो पाकिस्तान छाया हुआ है। इन फिल्मों की स्टोरी लाइन और संवादों में पाकिस्तान के प्रति नफरत गुंथी हुई सी है। भोजपुरी फिल्मों के कारोबार के आंकड़े बताते हैं कि 'पाकिस्तान' टाइटिल के साथ बनी फिल्में हिट हो रही हैं। भोजीवुड में छोटे बजट की फिल्में बनती हैं। फिल्म कला या भोजपुरी समाज की कहानी, उसकी समस्याओं से इतर इनका मकसद सिर्फ मुनाफा कमाना होता है। सिर्फ भोजपुरी फिल्में ही नहीं, बल्कि भोजपुरी एलबम का बाजार भी ऐसे गानों से पटा पड़ा है। दरअसल, नफरत परोसती भोजपुरी फिल्में प्रोपगेंडा फिल्मों की ही एक कड़ी हैं।

सीटू तिवारी

वर्ष 2015 में बिहार के एक बदबूदार और सीलन से भरे सिनेमा हॉल में भोजपुरी फिल्मों के सुपर स्टार दिनेश लाल निरहुआ ने जब यह संवाद बोला – "इतिहास की क्या औकात है, पूरा भूगोल बदल देंगे। लाहौर से गुजरेगी गंगा, इस्लामाबाद की छाती पर लहराएगा तिरंगा", तो पूरा हॉल सीटियों से गूंज उठा। मुरझाए-मेहनतकश चेहरे स्क्रीन पर नजर गड़ाए थे। उनकी पीली पड़ी आंखों की पुतलियों पर बनते सिनेमा की रंगीन रोशनी की परछाइयां थीं और जुबान पर पाकिस्तान के लिए भद्दी गालियां। यह फिल्म थी 'पटना से पाकिस्तान', जो सुपरहिट रही। इस फिल्म का सीकव्ल यानी पार्ट-2 बनने की घोषणा हो चुकी है, जिसमें मुख्य अभिनेता दिनेश लाल निरहुआ ही होंगे। सिर्फ 'पटना से पाकिस्तान' ही नहीं, बल्कि वर्ष 2016 में बनी 'दुल्हन चाही पाकिस्तान से' का भी सीकव्ल 2019 में रिलीज हुआ। भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री, जिसे भोजीवुड भी कहा जाता है, में हालिया वर्षों में बनीं फिल्मों पर नजर डालें, तो पाकिस्तान छाया हुआ है। 'पाकिस्तान से बदला', 'इंडिया वर्सेज पाकिस्तान', 'तिरंगा पाकिस्तान में', 'इलाहाबाद से इस्लामाबाद', 'ले आईब दुलहनिया पाकिस्तान से', 'लाहौर एक्सप्रेस', 'जंग पाकिस्तान से', 'मिशन पाकिस्तान', 'बार्डर पाकिस्तान', 'गदर' आदि फिल्में 2015 से अब तक बन चुकी हैं। इन फिल्मों की स्टोरी लाइन और संवादों में पाकिस्तान के प्रति नफरत गुंथी हुई सी है।

'पाकिस्तान' कनेक्शन यानी फिल्म हिट होने की गारंटी

भोजपुरी फिल्मों के कारोबार के आंकड़े बताते हैं कि 'पाकिस्तान' टाइटिल के साथ बनी फिल्में हिट हो रही हैं। भोजीवुड में छोटे बजट की फिल्में बनती हैं। फिल्म कला या भोजपुरी समाज की कहानी, उसकी समस्याओं से इतर इनका मकसद सिर्फ मुनाफा कमाना होता है। 'ले आईब दुलहनिया पाकिस्तान से' के अभिनेता विशाल का कहना है कि पाकिस्तान कनेक्शन फिल्म का कैनवास और कमाई दोनों को ही बड़ा कर देता है। पाकिस्तान टाइटल से जुड़ी कुछ फिल्मों के गीतकार प्यारे लाल यादव इसकी मिसाल देते हैं। वह कहते हैं कि जब भारत–पाकिस्तान का मैच होता है, तो लोग सब काम छोड़कर सिर्फ मैच देखते है, उसकी तरह ये फिल्में हैं। ये लोगों को उत्तेजित भी करती हैं और हमारे लिए कमाई भी लाती हैं। ऐसा लगता है पाकिस्तान के खिलाफ छद्म युद्ध का तिलिस्म और उसके ऊपर श्रेष्ठता के बोध (बाप-बेटे का रिश्ता बताना, खैरात जमीन देना – ऐसे संवाद इन फिल्मों में हैं) की दुनिया रचकर भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री अपनी गाड़ी को 'बुलेट ट्रेन' की रफ्तार से भगा रही है। ये तिलिस्मी दुनिया और श्रेष्ठता का बोध भारत-पाकिस्तान विभाजन के इतिहास की दिल दहलाने वाली घटनाओं और वाट्सएप यूनिवर्स्टी के प्रचार तंत्र से अपना 'दिमागी खुराक' पा रहा है और मजबूत हो रहा है। हाल ही में पाकिस्तानी अदाकारा मेहविश हयात ने नॉर्वे में एक पुरस्कार पाने के बाद अपने भाषण में जो कहा, वह इस बात की तसदीक भी करता है कि हमारी फिल्में राष्ट्रवाद के उभार को कैश कर रही हैं। हयात ने कहा कि भारत अपनी फिल्म इंडस्ट्री का इस्तेमाल पाकिस्तान को नीचा दिखाने और एक विलेन देश के तौर पर दिखाने के लिए कर रहा है। साफ है कि मेहविश की बातों के दायरे में बॉलीवुड और भोजीवुड दोनों ही आते हैं, जहां इस तरह की कई फिल्में बन रही हैं।

भोजपुरी फिल्मों का संसार

भोजपुरी फिल्में सिर्फ बिहार, झारखंड और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ही नहीं देखी जातीं, बल्कि जहां भी भोजपुरी भाषी लोग रोजगार की तलाश में गए हैं वहां भोजपुरी सिनेमा देखा जाता है। जोन के हिसाब से देखें, तो मुख्य तौर पर भोजपुरी फिल्मों का कारोबार छह जोन में बंटा है। दिल्ली-यूपी, बिहार-झारखंड, असम-पश्चिम बंगाल, गुजरात-मुंबई, पंजाब और नेपाल। इस इंडस्ट्री में सालाना तकरीबन सौ फिल्में बनती हैं, जिसमें से औसतन 60 फिल्में ही रिलीज हो पाती हैं। मोटे तौर पर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह इंडस्ट्री तकरीबन 2000 करोड़ की है। हालांकि अब थियेटर में भोजपुरी फिल्में देखने बहुत कम दर्शक जाते हैं। वजह यह है कि फिल्में रिलीज होने के तीन से चार माह के भीतर ही इंटरनेट पर आ जाती हैं। हर हाथ में स्मार्टफोन ने फिल्मों को देखना बहुत आसान कर दिया है। इस बीच सेटेलाइट अधिकार महंगे हुए हैं। फिल्म पीआरओ संजय भूषण बताते हैं कि पहले ये अधिकार जहां 20 लाख रुपये में बिकते थे, अब अगर किसी सुपरस्टार की फिल्म हो, तो ये अधिकार एक करोड़ में बिक रहे हैं। अगर फिल्म किसी औसत एक्टर की है, तो 30-40 लाख में ये अधिकार बिक जाते हैं।

भोजपुरी एलबम भी कतार में

सिर्फ भोजपुरी फिल्में ही नहीं, बल्कि भोजपुरी एलबम का बाजार भी ऐसे गानों से पटा पड़ा है। 'खून के होली खेलम पाकिस्तान से', 'पाकिस्तान जाएंगे बुर्का वाली को पटाएंगे', 'भारत के बेलन से मार खाई पाकिस्तान' 'आग लगा दो पाकिस्तान' से लेकर 'पाकिस्तान में जाएंगे, माल पटा कर लाएंगे' सरीखे अश्लील और आपत्तिजनक नाम वाले एलबम की इस बाजार में भरमार है। यू ट्यूब पर मौजूद इन गानों के लाखों व्यूज, एलबम से जुड़े लोगों के बाकायदा मोबाइल नंबर का डिसप्ले होना दो तरह का संकेत देता है। पहला, भोजपुरी समाज के एक बड़े तबके में इन गानों के बोल और इसको अपनी कमाई का जरिया बनाने वाले कलाकारों की सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ रही है। दूसरा, भोजपुरी में मनोरंजन के नाम पर परोसे जा रहे कंटेट पर किसी तरह की कोई लगाम नहीं है। सिने सोसाइटी पटना के अध्यक्ष जयमंगल देव इसकी वजह भोजपुरी फिल्मों/एलबम के दर्शक या श्रोता वर्ग का बहुत प्रभुत्वशाली वर्ग से नहीं आना बताते हैं। यही वजह है कि हिंदुओं के धार्मिक त्यौहार मसलन होली, रामनवमी और नवरात्र के वक्त भक्तिभाव, पाकिस्तान और एक धर्म विशेष के प्रति नफरत के अनोखे संगम के इर्द-गिर्द बुने कई एलबम रिलीज होते हैं और हिट भी होते हैं। बीते साल जब बिहार के कई हिस्सों में रामनवमी के समय शांति भंग हुई, तो ये गाने उसकी मुख्य वजह थे। दिलचस्प है कि गीतों और फिल्म के जरिए जहां एक तरफ नफरत फैलाने और उसे कैश करने की कोशिश है, वहीं परंपरा से आने वाले गीतों से इस तरह का विभाजन नहीं है। लोकगायिका चंदन तिवारी, जिन्हें इस साल संगीत नाटक अकादमी के बिस्मिल्लाह खान युवा सम्मान से नवाजा गया है, बताती हैं कि लोकगीतों में जातीय-धार्मिक गीतों का चलन है, लेकिन इनके गायन की परंपरा जातियों और धर्म से परे है। अमीर खुसरो ने सासों की माला में सुमरूं मै पी का नाम, मेरा राम लिखा, तो बिहार के रसूल मियां ने कृष्ण और राम पर अद्भुत गीत लिखे।

फिल्म, गीत-संगीत और राजनीति

यह सवाल बहुत अहम है कि आखिर फिल्मों, गीत-संगीत में यह नया ट्रेंड क्यों दिखाई दे रहा है?

संगीत नाटक अकादमी से नवाजे जा चुके वरिष्ठ रंगकर्मी परवेज अख्तर इसे राजनीति का नया नैरेटिव बताते हैं। उनके मुताबिक इस वक्त राजनीतिक एजेंडा तीन स्तरों पर काम कर रहा है। पहला, मुख्यधारा की राजनीति के जरिए। दूसरा, जमीनी स्तर पर फिल्म, गीत-संगीत-नाटक के जरिए और तीसरा, व्यक्ति से व्यक्ति का संवाद। अगर ध्यान से देखें, तो ये तीनों ही चीजें क्रमवार चल रही हैं। मुख्यधारा की राजनीति और हमारे नेताओं के बयान समाज में नफरत फैला रहे हैं, भोजीवुड उस नफरत को फिल्मों/एलबम के जरिए कैश तो करने के साथ-साथ पुख्ता कर रहा है। सबसे आखिर में यहीं नफरत व्यक्ति से व्यक्ति के संवाद यानी आपसी बातचीत के जरिए किसी संक्रामक रोग की तरह फैल रही है। प्रथम विश्वयुद्ध के वक्त अंग्रेजों ने इस बात को महसूस किया कि पब्लिक ओपिनियन या जनता की राय बनाने में फिल्में बहुत मददगार साबित होती हैं। 1920 के दशक में सोवियतों ने भी सिनेमा की ताकत को पहचाना और बाद में हिटलर के प्रचार मंत्री जोसेफ गोयबल्स ने भी। गोयबल्स ने नाजी जर्मनी में छोटी-छोटी न्यूज रील/डॉक्यूमेंट्री बनवाईं जिनको आम लोगों के बीच प्रचारित किया गया। दुनिया में जब कभी प्रोपगेंडा मूवी या प्रचार फिल्म का इतिहास लिखा जाएगा, उसमे 1935 में लेनी राइफेनस्थेल की नाजी प्रचार फिल्म 'ट्रयम्प ऑफ द विल' का नाम अग्रणी होगा। डॉक्यूमेंट्री स्टाइल में बनी इस फिल्म को सिर्फ हिटलर की जर्मनी ने ही नहीं, बल्कि फ्रांस ने भी खूब पसंद किया। ये दीगर बात है बाद के सालों में एडोल्फ हिटलर और तानाशाही पर्यायवाची बन गए। भारत में भी नफरत परोसती भोजपुरी फिल्में, प्रोपगेंडा फिल्मों की ही एक कड़ी हैं।

अस्सी के दशक में जब अफगान मुजाहिदीन रूसी सेना के खिलाफ लड़ रहे थे, तब अमेरिका उनके पीछे था। अमेरिका के 'डिक्लैसिफाइड' खुफिया दस्तावेजों के अनुसार 11 सितंबर 2001 के अल कायदा हमले के कई बरस पहले बिल क्लिंटन प्रशासन का तालिबान के साथ राब्ता था। वहां अंतरराष्ट्रीय सहयोग से नई सरकार बनने के बाद 2004 और 2011 में भी तालिबान के साथ बातचीत हुई थी। सन् 2013 में तालिबान ने कतर में दफ्तर खोला। चूंकि उन्होंने निर्वासित सरकार के रूप में खुद को पेश किया था, इसलिए काबुल सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। सन् 2015 में पाकिस्तान की कोशिशों से अफगान सरकार और तालिबान के बीच आमने-सामने की बात हुई। उन्हीं दिनों खबर आई कि तालिबान के संस्थापक मुल्ला उमर की मौत तो दो साल पहले हो चुकी है। इस तथ्य को तालिबान और पाकिस्तान दोनों ने छिपाकर रखा था। सन् 2018 में ईद के मौके पर तीन दिन का युद्धविराम भी हुआ। सितंबर 2018 में अमेरिका ने जलमय खलीलजाद को तालिबान के साथ बातचीत के लिए अपना दूत नियुक्त किया। उनके साथ दोहा में कई दौर की बातचीत के बाद समझौते के हालात बने ही थे कि बातचीत टूट गई। क्या यह टूटी डोर फिर से जुड़ेगी?

अफगान शांति-वार्ता के अंतर्विरोध

प्रमोद जोशी

फिलहाल अमेरिका और तालिबान के बीच एक अरसे से चल रही शांति-वार्ता एक झटके में टूट गई है, पर लगता है कि संभावनाएं पूरी तरह खत्म नहीं हुईं हैं। उम्मीद है कि इस दिशा में प्रगति किसी न किसी दिशा में जरूर होगी। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के सुरक्षा सलाहकार जॉन बोल्टन की अचानक बर्खास्तगी से संकेत यही मिलता है कि विदेशमंत्री पॉम्पियो जो कह रहे हैं, वह ज्यादा विश्वसनीय है। यूं भी समस्या से जुड़े सभी पक्षों के पास विकल्प ज्यादा नहीं हैं और इस लड़ाई को लंबा चलाना किसी के भी हित में नहीं है। अफगान समस्या के समाधान के साथ अनेक क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान भी जुड़े हैं। अफगानिस्तान के लिए नियुक्त अमेरिका के विशेष दूत जलमय खलीलजाद ने दो सितंबर को तालिबान के साथ 'सैद्धांतिक तौर' पर एक शांति समझौता होने का एलान किया था। प्रस्तावित समझौते के तहत अमेरिका अगले 20 हफ्तों के भीतर अफगानिस्तान से अपने 5,400 सैनिकों को वापस लेने वाला था। प्रस्तावित समझौते में प्रावधान था कि अमेरिकी सैनिकों की विदाई के बदले में तालिबान सुनिश्चित करता कि अफगानिस्तान का इस्तेमाल अमेरिका और उसके सहयोगियों पर हमले के लिए नहीं किया जाएगा।

कितनी मौतें?

अफगानिस्तान में 2001 में अमेरिका के नेतृत्व में शुरू हुए सैनिक अभियान के बाद से अंतरराष्ट्रीय गठबंधन की सेना के करीब साढ़े तीन हजार सैनिकों की जान जा चुकी है। इनमें 2300 अमेरिकी हैं। आम लोगों, चरमपंथियों और सुरक्षाबलों की मौत की संख्या का अंदाजा लगाना कठिन है। अलबत्ता इस साल संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में कहा गया कि वहां 32 हजार से ज्यादा आम लोगों की मौत हुई है। वहीं ब्राउन यूनिवर्सिटी के वॉटसन इंस्टीट्यूट का कहना है कि वहां 58 हजार सुरक्षाकर्मी और 42 हजार विद्रोही मारे गए हैं। ऐसा नहीं है कि तालिबान के साथ संपर्क करने की यह पहली अमेरिकी कोशिश है। वर्ष 2001 में हमले के पहले और उसके बाद भी अमेरिका और तालिबानियों के बीच संवाद चलता रहा है। अस्सी के दशक में जब अफगान मुजाहिदीन रूसी सेना के खिलाफ लड़ रहे थे, तब अमेरिका तालिबान के साथ था। अमेरिका के 'डिक्लैसिफाइड' खुफिया दस्तावेजों के अनुसार 11 सितंबर 2001 के अल कायदा हमले के कई बरस पहले बिल क्लिंटन प्रशासन का तालिबान के साथ राब्ता था। अमेरिका को तब भी अंदेशा था कि अफगानिस्तान में अल कायदा को बढ़ावा मिल रहा है। अक्टूबर 2001 में जब अमेरिका के नेतृत्व में अंतरराष्ट्रीय सेना ने अफगानिस्तान पर हमला बोला तो तालिबानियों ने कहा था कि हमारी जान बख्शी जाए, तो हम हथियार डालने को तैयार हैं। उस वक्त अमेरिका ने उन्हें पूरी तरह परास्त करने का फैसला किया था। वहां अंतरराष्ट्रीय सहयोग से नई सरकार बनने के बाद 2004 और 2011 में भी तालिबान के साथ बातचीत हुई थी।

कतर में दफ्तर

तालिबान ने 2013 में कतर में दफ्तर खोला। चूंकि उन्होंने निर्वासित सरकार के रूप में खुद को पेश किया, इसलिए काबुल सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। 2015 में पाकिस्तान की कोशिशों से अफगान सरकार और तालिबान के बीच आमने-सामने की बात हुई। उन्हीं दिनों खबर आई कि तालिबान के संस्थापक मुल्ला उमर की मौत तो दो साल पहले हो चुकी है। इस तथ्य को तालिबान और पाकिस्तान दोनों ने छिपाकर रखा था। बहरहाल उस साल अफगान राष्ट्रपति अशरफ गनी ने पेशकश की कि तालिबान तैयार हो तो उसे एक राजनीतिक दल के रूप में मान्यता दी जा सकती है। 2018 में उन्होंने ईद के मौके पर युद्धविराम का प्रस्ताव भी किया। तालिबान ने इस पर कोई जवाब नहीं दिया, पर ईद के पहले तीन दिन युद्धविराम रखा। 2001 के बाद वह पहला मौका था, जब अफगानिस्तान में लगातार तीन दिन तक शांति रही। इस साल मई में हुए लोया जिरगा में फिर युद्धविराम की अपील की गई, पर तालिबान ने इसे नामंजूर कर दिया। इस पेशकश के समानांतर अमेरिका और तालिबान के बीच पहली बार औपचारिक बातचीत भी चल रही थी, जो पिछले साल भर से जारी थी। सितंबर 2018 में अमेरिका ने जलमय खलीलजाद को इस काम के लिए अपना दूत नियुक्त किया। उनके साथ दोहा में कई दौर की बातचीत के बाद समझौते के हालात बने। तालिबान की पहली मांग है कि अफगानिस्तान से विदेशी सेनाएं हटें। उधर अमेरिका चाहता है कि व्यापक शर्तों के साथ कोई समझौता हो, जिसमें तालिबान की जिम्मेदारियां भी तय हों। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के लिए यह परीक्षा की घड़ी है, क्योंकि 2020 में होने वाले चुनाव में वह इसे अपनी सफलता के रूप में पेश करना चाहते हैं। हालांकि तालिबान काबुल सरकार को कठपुतली सरकार मानते हैं, पर पिछले कुछ महीनों में वे दो बार सरकारी प्रतिनिधियों के साथ मॉस्को में मुलाकात कर चुके हैं। अफगानिस्तान में अमेरिकी सेना के हटने के बाद की व्यवस्था कैसी होगी, इसे लेकर रूस, चीन, पाकिस्तान, ईरान और भारत की गहरी दिलचस्पी है।

शांति का सवाल : राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के लिए यह परीक्षा की घड़ी है। उन्हें लगता है कि अफगानिस्तान से सेना की वापसी अगले साल होने वाले राष्ट्रपति चुनाव में मददगार होगी।

कैंप डेविड वार्ता

अमेरिकी राष्ट्रपति की आठ सितंबर को कैंप डेविड में तालिबान के वरिष्ठ नेताओं और अफगानिस्तान के राष्ट्रपति अशरफ गनी से अलग-अलग मुलाकात तय थी, पर इससे एक दिन पहले ट्रंप ने ट्वीट कर बैठक रद्द कर दी। जब ट्रंप ने तालिबान के साथ प्रस्तावित वार्ता टूटने के संदर्भ में ट्वीट किया, तो उससे दो बातें एक साथ जाहिर हुईं। एक, इस वार्ता की जानकारी दुनिया को हुई। दूसरा, यह फैसला केवल काबुल में हुई ताजा धमाके से नहीं जुड़ा है, जिसमें अमेरिका के एक फौजी की मौत हो गई थी। पिछले डेढ़ साल से यह बातचीत दुनिया की जानकारी में हो रही है और दबे-छिपे तरीके से यह और भी पहले से चल रही थी। इस दौरान अफगानिस्तान में दर्जनों बार तालिबानी हमले हुए हैं, जिनमें अमेरिकी फौजियों की मौतें भी हुई हैं। इस साल जनवरी से अब तक 16 अमेरिकी सैनिक मारे गए हैं। यह बात जरूर चुभने वाली है कि जब समझौता होने ही वाला था, तब तालिबानी हमलों का मतलब समझ में नहीं आता। पर इससे यह भी लगता है कि समझौते को लेकर अमेरिकी प्रशासन के भीतर के मतभेद ज्यादा मुखर होकर सामने आने लगे थे। इसके संकेत एक-दो हफ्ते पहले मिलने लगे थे, जब खबरें आईं कि राष्ट्रपति के रक्षा सलाहकार जॉन बोल्टन को इस बातचीत से अलग रखा गया था। साफ तौर पर लगता है कि विदेशमंत्री माइक पॉम्पियो और जॉन बोल्टन एक पेज पर नहीं थे। मंगलवार को राष्ट्रपति ट्रंप ने बोल्टन की अचानक छुट्टी कर पिछले तीन वर्षों में इस पद से तीसरी बार किसी को हटाया गया। ट्रंप ने ट्वीट किया, 'मैंने जॉन से इस्तीफा मांगा, और सुबह मुझे वह सौंप दिया गया।' हालांकि बोल्टन ने दावा किया कि उन्होंने खुद इस्तीफा दिया है, पर इससे फर्क क्या पड़ता है? तालिबानियों से बातचीत का अंतिम दौर पूरा करने के बाद अमेरिकी दूत जलमय खलीलजाद अगस्त में जब राष्ट्रपति ट्रंप से बात करने आए थे, तब रक्षा सलाहकार जॉन बोल्टन ने अपने आप को उस बातचीत से अलग रखा था।

बोल्टन बनाम पॉम्पियो

खलीलजाद विदेशमंत्री के निर्देश में बातचीत कर रहे थे। उन्होंने रक्षा सलाहकार को जानकारियां नहीं दीं। इससे ट्रंप प्रशासन के भीतर इस विषय पर चल रहे अंतर्विरोध स्पष्ट हो गए थे। रविवार को ट्रंप के ट्वीट के बाद पॉम्पियो ने कहा कि दोनों पक्ष भविष्य में वार्ता बहाल कर सकते हैं। पॉम्पियो से पूछा गया था कि 5000 अमेरिकी सैनिकों की अफगानिस्तान से वापसी क्या अब टल जाएगी? इन सैनिकों की वापसी अगले साल के शुरू में होनी है और साल के अंत तक लगभग सभी सैनिकों की वापसी की योजना है। बदले में तालिबान ने वादा किया है कि वह अल कायदा से रिश्ते पूरी तरह तोड़ लेगा और आतंकवाद विरोधी प्रयासों में भाग लेगा। पॉम्पियो ने एक साथ पांच टीवी चैनलों के साथ विशेष कार्यक्रमों में कहा कि सेना के संख्याबल में कटौती वास्तविक परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। कुल मिलाकर देखें, तो लगता है कि अफगानिस्तान से सेना की वापसी को लेकर सबसे ज्यादा उत्सुक डोनाल्ड ट्रंप ही हैं। कैम्प डेविड वार्ता की तो भनक भी किसी को नहीं थी। उनकी यह बातचीत इस बात की याद दिला रही है कि वे उत्तरी कोरिया के किम जोंग उन से मिलने को कितने उत्सुक थे और ईरान के राष्ट्रपति हसन रूहानी से मिलने की उनकी इच्छा कितनी प्रबल है। दूसरे पक्ष को आमने-सामने की बातचीत में खुश करने की कला में वह खुद को पारंगत मानते हैं। उन्हें लगता है कि अफगानिस्तान से सेना की वापसी अगले साल के राष्ट्रपति चुनाव में मददगार होगी।

अमेरिकी उलझन

अमेरिकी विदेश विभाग के अधिकारियों का कहना है कि ट्रंप ने खुद संकेत दिए थे कि वह बातचीत से काफी हद तक संतुष्ट हैं, पर उन्होंने समझौते के अंतिम स्वीकृति नहीं दी थी। अलबत्ता उन्होंने कैंप डेविड वार्ता की स्वीकृति देकर मामले को उलझा भी दिया। उधर बोल्टन ने कुछ अलग बातें कहीं। वह खलीलजाद से सीधे संवाद में थे। सेनाध्यक्ष और राष्ट्रपति से भी बातें कर रहे थे, पर विदेशमंत्री पॉम्पियो से नहीं। बोल्टन ने सैनिकों की संख्या कम करने का विरोध नहीं किया, पर वह तालिबानियों के साथ समझौता करने के खिलाफ थे। उनका कहना था कि राष्ट्रपति ने जनता से वादा किया है कि अफगानिस्तान में सैनिकों की संख्या कम की जाएगी। यह काम तालिबानियों से समझौता किए बगैर भी हो सकता है। अफगानिस्तान के हालात को लेकर भी अमेरिकी प्रशासन के दृष्टिकोण में अंतर्विरोध हैं। पॉम्पियो का कहना है कि यह गलतफहमी है कि तालिबान का प्रभाव अफगानिस्तान में बढ़ रहा है। वस्तुतः उनकी हालत खराब है और खराब होती जा रही है। हम अमेरिकी हितों की रक्षा करने की दिशा में ही सोच रहे हैं। दूसरी तरफ तालिबान का कहना है कि वार्ता के रद्द होने से अमेरिका के लिए स्थितियां बिगड़ेंगी। उनके प्रवक्ता जबीउल्ला मुजाहिद ने एक बयान जारी करके कहा कि बातचीत टूटने से अमेरिका की साख को धक्का लगेगा, दुनिया के सामने उसकी छवि शांति-विरोधी की बनेगी और लड़ाई में उसकी जान-माल का नुकसान भी ज्यादा होगा। इस बयान के अनुसार समझौते पर दस्तखत होने की घोषणा के बाद अफगानिस्तान सरकार और देश से जुड़े लोगों के साथ व्यापक बातचीत 23 सितंबर को होने वाली थी। तालिबान के साथ बातचीत की इच्छा अशरफ गनी ने व्यक्त की थी। हालांकि ट्रंप ने बातचीत टूटने का ट्वीट रविवार को किया था, पर बताते हैं कि कैंप डेविड वार्ता को रद्द करने का फैसला गुरुवार को ही हो गया था।

राजनीतिक जोखिम

तालिबान के साथ वार्तालाप में शामिल रहे अमेरिकी अधिकारियों का कहना है कि तालिबानियों का यह दृष्टिकोण हमेशा रहा कि जब तक युद्धविराम समझौता नहीं होगा, हम लड़ते रहेंगे। अधिकारियों का कहना है कि हमें अंदेशा था कि समझौता होने तक हिंसा बढ़ सकती है। पॉम्पियो ने टीवी चैनलों से अपनी बातचीत में कहा कि राष्ट्रपति कैंप डेविड में तालिबान प्रतिनिधियों से मुलाकात करके सायास एक राजनीतिक जोखिम मोल रहे थे। यदि हमें शांति स्थापित करनी है, तो हमें अक्सर क्षुद्र लोगों से भी बात करनी पड़ती है। कैंप डेविड वह जगह है जहां 9/11 की घटना के बाद अमेरिकी नेताओं ने बैठकर अल कायदा के खात्मे की योजना बनाई थी। पॉम्पियो के टीवी कार्यक्रमों के बाद अमेरिकी सांसद लिज चेनी ने ट्वीट किया, 'तालिबान के किसी प्रतिनिधि को कभी भी यहां पैर नहीं रखने देना चाहिए।' लिज चेनी देश के पूर्व उप राष्ट्रपति की बेटी हैं।